चतुर्दश खण्ड

ठाकुर श्रीरामकृष्ण बलराम-मन्दिर में भक्तों के संग

प्रथम परिच्छेद

(ठाकुर के निज मुख द्वारा कथित साधना-विवरण)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण कलकत्ता में श्रीयुक्त बलराम की बैठक में भक्तों के संग बैठे हुए हैं। गिरीश, मास्टर, बलराम— क्रमश: छोटे नरेन, पल्टु, द्विज, पूर्ण, महेन्द्र मुखुज्ये इत्यादि— अनेक भक्त उपस्थित हैं। धीरे-धीरे ब्राह्मसमाज के श्रीयुक्त त्रैलोक्य सान्याल, जयगोपाल सेन आदि अनेक भक्त आ गए हैं। स्त्री भक्त भी अनेक आई हैं। वे चिक की ओट में बैठकर ठाकुर के दर्शन कर रही हैं। मोहिनी की स्त्री भी आई है— पुत्रशोक में उन्मादिनी की न्यायीं— वे और उनके जैसी सन्तप्त बहुत-सी आई हैं। यही विश्वास है कि ठाकुर के निकट निश्चय ही शान्ति प्राप्त होगी।

आज है पहला बैसाख, चैत्र की कृष्णा त्रयोदशी, 12 अप्रैल, 1885 ईसवी, रविवार। समय, 3 बजे होंगे।

मास्टर ने आकर देखा, ठाकुर भक्तों की मजलिस करके बैठे हैं और अपनी साधना का विवरण और नाना प्रकार की आध्यात्मिक अवस्था का वर्णन कर रहे हैं। मास्टर ने आकर ठाकुर को भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया और उनके आदेश से उनके निकट आकर बैठ गए।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— उस समय (साधना के समय) ध्यान में देखा करता था, सचमुच कोई जन निकट हाथ में शूल पकड़े हुए बैठा है। भय

दिखाता था— 'यदि ईश्वर के पादपद्मों में मन नहीं रखेगा तो शूल के आघात (वार) से मुझे मार देगा। मन ठीक (सच्चा) नहीं होने से छाती चली जाएगी।'

(नित्य-लीलायोग— पुरुष-प्रकृति— विवेकयोग)

''कभी-कभी माँ ऐसी अवस्था कर देती थीं कि मन नित्य से लीला में उतर आया करता। और फिर कभी लीला से नित्य में मन चढ़ जाता।

''जब लीला में मन उतर आता, तब कभी-कभी सीता-राम का चिन्तन रात-दिन किया करता था और सीता-राम-रूप सर्वदा दर्शन हुआ करते। रामलला (राम का अष्टधातु निर्मित छोटा विग्रह) को लेकर सर्वदा घूमता रहता, कभी नहलाता, कभी खिलाता और कभी-कभी राधा-कृष्ण के भाव में रहता। वही रूप सर्वदा दर्शन हुआ करते। और कभी-कभी गौरांग के भाव में रहा करता। दोनों ही भावों का मिलन— पुरुष और प्रकृति-भाव का मिलन। इस अवस्था में सर्वदा ही गौरांग का रूप-दर्शन होता था। फिर और अवस्था बदल गई! तब लीला त्याग करके नित्य में मन चढ़ गया! सहजन और तुलसी सब एक बोध होने लगे। ईश्वरीय रूप और अच्छे नहीं लगते थे। कहा था, 'तुमसे तो विच्छेद हो जाता है'। तब उनको (पैर के) तले के नीचे रख लिया था। कमरे में जितने ईश्वरीय पट व छवियाँ थीं, सब उतार डाली थीं। केवल उसी अखण्ड सच्चिदानन्द, उसी आदिपुरुष का चिन्तन करने लगा था। स्वयं दासी-भाव में रहता था— पुरुष की दासी।

''मैंने सब प्रकार के साधन किए हैं। साधना तीन प्रकार की है— सात्त्विक, राजसिक, तामसिक।

''**सात्त्विक साधना** में उनको व्याकुल होकर पुकारता है अथवा उनका शुद्ध नाम ही लेता रहता है और कोई भी फलाकांक्षा नहीं। **राजसिक साधना** में नाना प्रकार की प्रक्रिया करता है— इतनी बार पुरश्चरण करना होगा, इतना तीर्थ करना होगा, पंचतपा करना होगा, षोडशोपचार-पूजा करनी होगी इत्यादि। **तामसिक साधना** है तमोगुण-आश्रय करके साधना। जय काली! क्या! तू

दर्शन नहीं देगी? अपने गले पर छुरी मार लूँगा यदि नहीं दिखाई देगी। इस साधना में शुद्धाचार नहीं होता— जैसे तन्त्र की साधना।

''उस अवस्था (साधना की अवस्था) में अद्‌भुत सब दर्शन हुआ करते। आत्मा का रमण प्रत्यक्ष देखा करता था। मेरे जैसे रूप वाले एक जन ने मेरे शरीर में प्रवेश किया! और षट्पद्मों के प्रत्येक पद्म के संग रमण करने लगा। षट्पद्म बन्द थे— टक-टक करके रमण करता और एक पद्म प्रस्फुटित हो जाता और उर्ध्वमुख हो जाता! इस प्रकार मूलाधार, स्वाधिष्ठान, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञाचक्र, सहस्रार— सब पद्म खिल गए। और नीचे मुख था, ऊर्ध्वमुख हो गए, प्रत्यक्ष देखा था।''

(ध्यानयोग साधना— 'निवात निष्कम्पमिव प्रदीपम्')

''साधना के समय मैं ध्यान करते-करते आरोप करता था 'प्रदीप की शिखा— जब हवा नहीं होती, तनिक भी नहीं हिल रही होती'— उसका आरोप किया करता था।

''गम्भीर ध्यान में बाह्यज्ञान शून्य हो जाता है। एक व्याध पक्षी को मारने के लिए निशाना लगा रहा है। पास से वर चला जा रहा है। संग में बाराती हैं। कितनी रोशनी, बाजे, गाड़ियाँ, घोड़े! कितनी ही देर तक पास से चले गए। किन्तु व्याध को होश नहीं। उसे पता भी नहीं लगा कि पास से वर चला गया।

''कोई, अकेला एक तालाब के किनारे मछली पकड़ रहा है। बड़ी देर पश्चात् फातना[1] हिलने लगा, बीच-बीच में टेढ़ा होने लगा। वह तब छिप[2] हाथ में लेकर खींच मारने का उद्योग कर रहा है। ऐसे समय किसी पथिक ने निकट आकर पूछा, 'महाशय, अमुक बाँडुज्य का घर कहाँ पर है— बता सकते हैं?' कोई उत्तर नहीं। यह व्यक्ति तब छिप हाथ में लेकर खींच मारने

1 फातना मछली पकड़ने की बंसी की डोरी में बँधी हुई हल्की लकड़ी या सोले का टुकड़ा जो जल पर तैरता रहता है।

2 पतला बाँस जिसके सिरे पर मछली फँसाने के लिए सूत और बंसी लगी होती है।

का उद्योग कर रहा है। पथिक बार-बार उच्च स्वर में कहने लगा, महाशय, अमुक बाँड़ुज्य का घर कहाँ पर है— बता सकते हो? इस व्यक्ति को होश नहीं। इसका हाथ काँप रहा है, केवल फातना की ओर दृष्टि है। तब पथिक विरक्त (परेशान) होकर चला गया। वह काफी दूर चला गया। उस समय फातना डूब गया, और यह व्यक्ति खींच मारकर मछली को सूखे पर ले आया। तब अंगोछे से मुख पूँछकर, चीत्कार करके पथिक को पुकारता है— 'अरे भाई! सुनो-सुनो!' पथिक लौटना नहीं चाहता, बहुत पुकारने पर लौटा। आकर बोला, 'क्यों महाशय, अब फिर क्यों पुकार रहे हो?' तब यह बोला, 'तुम मुझ से क्या कह रहे थे?' पथिक ने कहा, 'तब इतनी बार पूछा था— और अब पूछते हो क्या कहता था!' यह बोला, 'तब तो फातना डूब रहा था, जभी मैं कुछ भी सुन नहीं पाया था।'

"ध्यान में इसी प्रकार एकाग्रता हो जाती है, अन्य कुछ भी दिखाई नहीं देता, सुनाई भी नहीं देता। स्पर्श-बोध तक भी नहीं होता। साँप शरीर के ऊपर से चला जाता है, पता तक नहीं लगता। जो ध्यान करता है वह समझ नहीं सकता— साँप भी समझ नहीं सकता। गम्भीर ध्यान में इन्द्रियों के सभी कार्य बन्द हो जाते हैं। मन बहिर्मुख नहीं रहता— जैसे घर का बाहरी द्वार बन्द हो गया हो। इन्द्रियों के पाँच ही विषय हैं— रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द— बाहर पड़े रहेंगे।

"ध्यान के समय प्रथम-प्रथम इन्द्रियों के विषय सब सामने आते हैं— गम्भीर ध्यान में वे सब फिर और नहीं आते, बाहर पड़े रहते हैं। ध्यान करते-करते मेरा कितना कैसा-कैसा दर्शन हुआ करता था! प्रत्यक्ष देखा था— सामने रुपयों का ढेर, शाल, थाल भरा सन्देश, दो लड़कियाँ, उनके बड़े घेरे वाली नथें। फिर मन से पूछा था— 'मन, तू क्या चाहता है? कुछ भोग करना चाहता है क्या?' मन ने कहा, 'नहीं, कुछ भी नहीं चाहता। ईश्वर के पादपद्म छोड़ और कुछ भी नहीं चाहता।' लड़कियों का भीतर-बाहर समस्त देख लिया था— जैसे काँच के कमरे की समस्त वस्तुएँ बाहर से दिखाई देती हैं! उनके भीतर देखा था— आँतें, रक्त, विष्ठा, कृमि (कीड़े), कफ, नाल, पेशाब— यही सब हैं।"

(अष्ट सिद्धि और ठाकुर श्रीरामकृष्ण— गुरुगिरि और वेश्या-वृत्ति)

श्रीयुक्त गिरीश ठाकुर का नाम करके रोग ठीक करेंगे— यह बात कभी-कभी कहते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(गिरीश प्रभृति भक्तों के प्रति)*— जिनकी हीन बुद्धि है, वे ही सिद्धाई माँगते हैं। रोग ठीक करना, मुकदमा जिताना, जल के ऊपर पैदल चलना— ये सब। जो शुद्ध भक्त हैं, वे ईश्वर के पादपद्मों को छोड़ और कुछ भी नहीं माँगते। हृदे ने एक दिन कहा, 'मामा! माँ से कुछ शक्ति माँगो, कुछ सिद्धाई माँगो।' मेरा है बालक का स्वभाव— काली-मन्दिर में जप करते समय माँ से कहा, 'माँ, हृदे कुछ शक्ति माँगने, कुछ सिद्धाई माँगने को कहता है।' तुरन्त दिखा दिया सामने आकर पीछे मुड़कर उकडूँ (घुटने उठाकर केवल पैरों पर बैठना) पैरों के भार बैठ गई— एक बूढ़ी वेश्या, चालीस वर्षीया— धामा पोंद (टोकरी) जैसे चूतड़— काली कन्नी की धोती पहने पड़-पड़ करके हग रही है! माँ ने दिखा दिया कि सिद्धाई इसी बूढ़ी वेश्या की विष्ठा है! तब हृदे को जाकर धमकाया और कहा, 'तूने क्यों मुझको ऐसी बात सिखाई है? तेरे लिए ही तो मुझे इस प्रकार हुआ!'

''जिनके पास तनिक-सी सिद्धाई रहती है, उनकी प्रतिष्ठा, नाम, यश— ये सब हो जाता है। बहुतों की इच्छा होती है गुरुगिरि करें— पाँच जन (अनेक जन) मान्यता दें, शिष्य-सेवक हो जाएँ। लोग कहेंगे, गुरुचरण के भाई का आजकल बढ़िया समय है— कितने लोग आते-जाते हैं, शिष्य-सेवक बहुत हो गए हैं, घर में चीजों का ढेर लग रहा है। कितनी वस्तुएँ, कितने लोग ला देते हैं! वह यदि चाहे— उसकी ऐसी शक्ति हो गई है कि वह कितने ही लोगों को खिला सकता है।

''गुरुगिरि वेश्यागिरि जैसी है। तुच्छ रुपये-पैसे, नाम-यश, शरीर-सेवा— इन सबके लिए अपने-आप को बेचना! जिस शरीर, मन, आत्मा के द्वारा ईश्वर को प्राप्त किया जाता है, उसी शरीर, मन, आत्मा को सामान्य वस्तु के लिए ऐसा बनाकर रखना ठीक नहीं।* किसी ने बताया था साबि का अब खूब समय है, अब इसका बढ़िया (रहन-सहन) हो गया है— एक कमरा

---

* आत्मानम् नावसादयेत्— गीता

किराए पर (भाड़े पर) ले लिया है; कण्डे (उपले) रे, गोबर रे, तख्तपोश, दो-चार बर्तन हो गए हैं, बिछौना, चटाई (मादुर बारीक बढ़िया) तकिये— कितने लोग वशीभूत हैं, जाते-आते हैं! अर्थात् साबि अब वेश्या हो गई है। जभी सुख समाता नहीं। पहले वह भले व्यक्ति के घर की दासी थी, अब वेश्या हो गई है! सामान्य-सी वस्तु के लिए अपना सर्वनाश!''

(श्रीरामकृष्ण की साधना में प्रलोभन (temptation)— ब्रह्मज्ञान और अभेदबुद्धि)

श्रीरामकृष्ण और मुसलमान धर्म

''साधना के समय ध्यान करते-करते मैं और भी कितना कुछ देखा करता था। बेलतले में ध्यान कर रहा था। पाप-पुरुष आकर कितने प्रकार के लोभ दिखाने लगा। लड़ाकू गोरे का रूप धर कर आया था। रुपया, मान, रमण-सुख, नाना प्रकार की शक्ति— ये सब देना चाहता था। मैं माँ को पुकारने लगा। बड़ी गुह्य बात है। माँ ने दर्शन दिया। तब मैंने कहा था, 'माँ उसको काट डालो!' माँ का वही रूप— वही भुवनमोहन रूप— याद आ रहा है! कृष्णमयी* का रूप!— किन्तु उनकी (माँ की) दृष्टि में जैसे जगत डोल रहा है!''

ठाकुर चुप हो गए। ठाकुर फिर और कहते हैं—

''और भी कितना क्या-क्या पर बोलने नहीं देता!— मुख को जैसे कोई अटका रहा है! (बन्द कर रहा है)!

''सजना (सहजना) व तुलसी एक बोध होता! भेदबुद्धि दूर कर दी। बटतले ध्यान कर रहा था, दिखाया एक दाढ़ी वाला मुसलमान (मोहम्मद/पैगम्बर) सानकि (चीनी मिट्टी की थाली) में भात लेकर सामने आ गया। सानकि में से म्लेच्छों को खिलाकर मुझको थोड़ा-सा दे गया। माँ ने दिखलाया, 'एक बोइ दुइ नाइ' (एक के अतिरिक्त दूसरा नहीं है)। सच्चिदानन्द ही नाना रूप

* कृष्णमयी— बलरामबसु की बालिका कन्या।

धारण किए हुए हैं। वे ही जीव-जगत समस्त बने हुए हैं। वे ही अन्न हुए हैं।''

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण का बालक-भाव और भावावेश)

(गिरीश, मास्टर आदि के प्रति)— ''मेरा है बालक-स्वभाव। हृदे ने कहा, मामा! माँ से कुछ शक्ति की बात कहो— तुरन्त माँ से कहने चल पड़ा! ऐसी अवस्था में रखा हुआ था कि जो व्यक्ति पास रहेगा उस की बात सुननी ही पड़ती थी! छोटा बच्चा जैसे कोई पास न रहने से सब अन्धकार ही देखता है, मेरा भी वैसा ही होता। हृदय जब पास न रहता तो प्राण जाय-जाय होता। यह देखो, वही भाव ही आ रहा है!— बातें करते-करते उद्दीपन हो रहा है।''

अब बात करते-करते ठाकुर भावाविष्ट हो रहे हैं। देश-काल-बोध हटा जा रहा है। अति कष्ट से भाव संवरण करने की चेष्टा कर रहे हैं। भाव में कह रहे हैं, 'अब भी तुम लोगों को देख रहा हूँ, किन्तु बोध हो रहा है जैसे चिरकाल से तुम लोग बैठे हुए हो, कब आए हो, कहाँ पर आए हो— यह सब कुछ भी स्मरण नहीं है।''

ठाकुर कितनी ही देर स्थिर हुए रहे।

किञ्चित् प्रकृतिस्थ होकर कह रहे हैं, 'जल पिऊँगा।' समाधि भंग होने के बाद मन को नीचे उतारने के लिए ठाकुर यही बात प्राय: कहते हैं। गिरीश नूतन आने लगे हैं, जानते नहीं हैं। तभी जल लाने के लिए उद्यत हुए। ठाकुर ने मना किया और कहा, 'नहीं भाई, अब नहीं पी सकूँगा।' ठाकुर और भक्तगण थोड़ी देर चुप रहे। अब ठाकुर फिर बातें करते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— हाँ जी, क्या मेरे से कुछ अपराध हो गया है— ये सब (गुह्य) बातें बताने से?

मास्टर क्या कहें! चुप किए रहे। तब ठाकुर फिर और कहते हैं,

''ना, अपराध क्यों होगा? मैं तो लोगों के विश्वास के लिए बताता हूँ।''

कितने समय पश्चात् जैसे कितना अनुनय करके कह रहे हैं,

''उनके संग मिला दोगे?'' (अर्थात् पूर्ण के संग में)।

मास्टर *(संकुचित भाव से)*— जी, अभी इसी समय ही खबर भेज दूँगा।
श्रीरामकृष्ण *(साग्रह)*— वहीं पर सिरा (कोना) मिल रहा है।

ठाकुर क्या कह रहे थे कि अन्तरंग भक्तों के भीतर पूर्ण अन्तिम (शेष) भक्त है, उनके पश्चात् प्राय: कोई नहीं है?

द्वितीय परिच्छेद

(पूर्वकथा— श्रीरामकृष्ण का महाभाव— ब्राह्मणी की सेवा)

गिरीश, मास्टर आदि को सम्बोधन करके ठाकुर अपने महाभाव की अवस्था का वर्णन कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— उस अवस्था के पश्चात् जैसा आनन्द होता, पहले यन्त्रणा भी वैसी ही होती। महाभाव, ईश्वर का भाव— इस देह-मन को उलट-पुलट कर देता है। जैसे एक बड़ा हाथी फूस के घर में घुस जाता है। घर उलट-पुलट हो जाता है! शायद टूट-फूट जाता है।

''ईश्वर की विरह-अग्नि सामान्य नहीं होती। रूप-सनातन जिस पेड़ के नीचे बैठे रहते थे, वैसी अवस्था होने पर ऐसा है कि पेड़ के पत्ते झुलसकर जल जाते थे! मैं इस अवस्था में तीन दिन बेहोश रहा था। हिल-डुल नहीं सकता था। एक जगह पर पड़ा रहा था। होश आने पर बामनी (ब्राह्मणी)* मुझे पकड़कर स्नान के लिए ले गई थी। किन्तु हाथ द्वारा शरीर छूने योग्य नहीं था। शरीर मोटी चादर से ढका हुआ था। बामनी उसी चादर के ऊपर से हाथ के द्वारा पकड़ कर ले गई थी। शरीर पर जो मिट्टी लग गई थी, वह जल गई थी।

''जब वैसी अवस्था आती तो मेरुदण्ड (रीढ़) के भीतर से फाल (माला) चल जाती! 'प्राण गया, प्राण गया' ऐसा किया करता था। किन्तु तत्पश्चात् खूब आनन्द!''

भक्तगण इस महाभाव की अवस्था का वर्णन अवाक् होकर सुनते हैं।

---

* श्रीरामकृष्ण की तन्त्रसाधना की आचार्या भैरवी ब्राह्मणी।

श्रीरामकृष्ण *(गिरीश के प्रति)*— इतने का तुम लोगों को प्रयोजन नहीं है। मेरा भाव तो केवल दृष्टान्त के लिए है! तुम बहुतों को लेकर रहते हो, मैं एक को ही लेकर रहता हूँ। मुझे ईश्वर के अतिरिक्त कुछ अच्छा नहीं लगता। उनकी इच्छा है। *(सहास्य)*। एक डाल वाला वृक्ष भी है और फिर पाँच डालों वाला वृक्ष भी है। *(सब का हास्य)*।

"मेरी अवस्था दृष्टान्त के लिए है। तुम लोग संसार करो अनासक्त होकर। शरीर पर कीचड़ लगेगी किन्तु झाड़ डालोगे पांकाल मछली की भाँति। कलंक (कालिख) के सागर में तैरोगे— तो भी शरीर पर कलंक (कालिख) नहीं लगेगी।"

गिरीश *(सहास्य)*— आपका भी तो विवाह हुआ है। *(हास्य)*।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— संस्कार के लिए विवाह करना पड़ा, किन्तु गृहस्थ फिर कैसे होगा! गले में जनेऊ (यज्ञोपवीत) पहना दिया और फिर वह खुल-खुल जाता है— सम्भाल नहीं सकता। एक मत में है शुकदेव का विवाह हुआ था— संस्कार के लिए एक कन्या भी शायद हुई थी। *(सबका हास्य)*।

"कामिनी-काञ्चन ही संसार है— ईश्वर को भुला देते हैं।"

गिरीश— कामिनी-काञ्चन ही कहाँ छूटता है?

श्रीरामकृष्ण— उन्हें व्याकुल होकर प्रार्थना करो, विवेक के लिए प्रार्थना करो। 'ईश्वर ही सत्य और सब अनित्य'— इसका ही नाम है विवेक! जल के छौंक द्वारा जल छौंक कर लेना चाहिए। गन्द एक ओर रह जाए— अच्छा जल एक तरफ रहे, विवेक रूप जल का छौंक आरोप करो। तुम लोग उनको जानकर संसार करो। इसका ही नाम है विद्या का संसार।

"देखो ना, औरतों की कैसी मोहिनी शक्ति है— अविद्यारूपिणी स्त्रियों की! पुरुषों को जैसे मूर्ख, अपदार्थ बनाकर रख देती हैं। जब भी देखता हूँ कि स्त्री-पुरुष एक साथ बैठे हुए हैं, तब कहता हूँ, आह! ये लोग गए! *(मास्टर की ओर ताकते हुए)*— हारु ऐसा सुन्दर लड़का था, उसे प्रेतनी ने पकड़ लिया था!— 'ओ रे हारु कहाँ गया? ओ रे हारु कहाँ गया?' फिर

हारु कहाँ गया! सब ने जाकर देखा हारु वटवृक्ष के नीचे चुपचाप बैठा है। वह रूप नहीं, वह तेज नहीं, वह आनन्द नहीं। वटवृक्ष की प्रेतनी ने हारु को पकड़ लिया था।

''स्त्री यदि कहती है 'जाओ तो एक बार'— झट उठकर खड़ा हो जाता है, 'बैठो तो'— झट बैठ गया।

''कोई उम्मीदवार बड़े बाबू के पास जा-जाकर हैरान हो गया था। काम नहीं मिलता था। आफिस के बड़े बाबू थे। उन्होंने कह दिया, अभी जगह खाली नहीं है, बीच-बीच में आकर पूछ जाना। इस प्रकार कितने ही दिन निकल गए। उम्मीदवार हताश हो गया। उसने किसी मित्र से दु:खड़ा कहा। मित्र ने कहा, 'तेरी कैसी बुद्धि! उसके पास आना-जाना करने में जूता क्यों तोड़ता है? तू गुलाब को पकड़, कल ही तेरा काम हो जाएगा।' उम्मीदवार बोला, 'अच्छा, ठीक! मैं अभी जाता हूँ।' गुलाब बड़े बाबू की रखेल है। उम्मीदवार ने मिलकर कहा— 'माँ, तुम नहीं करोगी तो नहीं होगा। मैं महाविपद में पड़ गया हूँ। ब्राह्मण का लड़का हूँ और कहाँ पर जाऊँ! माँ, बहुत दिनों से काम नहीं है, बच्चे बिना खाए मरे जा रहे हैं। तुम्हारी एक बात कहने से ही मेरा यह कार्य हो जाएगा।' गुलाब ब्राह्मण के लड़के से बोली, 'बच्चे, किसको कहने से होगा?' और सोचने लगी, हाय, ब्राह्मण का लड़का बड़े कष्ट में है! उम्मीदवार ने कहा, 'बड़े बाबू को केवल एक बार ही कहने से मेरा काम निश्चय ही हो जाएगा।' गुलाब ने कहा, 'मैं बड़े बाबू से आज ही कह कर ठीक कर रखूँगी।' उसके अगले दिन प्रात: उम्मीदवार के पास एक व्यक्ति पहुँचा। वह बोला, 'तुम आज ही बड़े बाबू के आफिस में चले जाओ। बड़े बाबू ने साहब से कह दिया, 'यह व्यक्ति बड़ा उपयुक्त है। इसको नियुक्त कर लिया गया है, इसके द्वारा आफिस का विशेष उपकार होगा।'

''इस कामिनी-काञ्चन को लेकर सब ही डूबे हुए हैं। मुझे किन्तु यह सब अच्छा नहीं लगता। कसम खाकर कहता हूँ, ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानता।''

तृतीय परिच्छेद

(सत्य बोलना कलि की तपस्या— ईश्वरकोटि और जीवकोटि)

एक भक्त— महाशय, 'नव-हुल्लोल' नामक एक मत निकला है। श्रीयुक्त ललित चाटुज्ये उसमें हैं।

श्रीरामकृष्ण— नाना मत हैं। मत पथ। किन्तु सब ही सोचते हैं, मेरा मत ही ठीक है— मेरी घड़ी ठीक चल रही है।

गिरीश *(मास्टर के प्रति)*— पोप क्या कहते हैं?— It is with our judgements...* इत्यादि।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— क्यों भई, इसके क्या मायने हैं?

मास्टर— सब ही सोचते हैं, मेरी घड़ी ठीक चलती है, किन्तु घड़ियाँ परस्पर मिलती नहीं।

श्रीरामकृष्ण— फिर भी अन्य घड़ियाँ कितनी भी गलत क्यों न हों, सूर्य किन्तु ठीक चलता है। उसी सूर्य के साथ मिला लेनी चाहिए।

एक भक्त— अमुक बाबू बड़ी मिथ्या बातें करता है।

श्रीरामकृष्ण— सत्य वाणी कलि की तपस्या है। कलि में अन्य तपस्या कठिन है। सत्य पर रहने से भगवान को पा लेता है। तुलसीदास कहते हैं—

> ''सत्यकथा, अधीनता, परस्त्री मातृसमान,
> इससे हरि न मिलें तुलसी झूठ जबान।''

''केशवसेन ने बाप का उधार मान लिया था। और व्यक्ति होता तो कभी न मानता, कुछ भी लिखत-पढ़त नहीं थी। जोड़ा सांको के देवेन्द्र के समाज में गया था। केशवसेन वेदी पर बैठा ध्यान कर रहा था। तब लड़का था। मैंने सेजोबाबू से कहा था, 'जितने जो सब ध्यान कर रहे हैं, इस लड़के का फता (फात्ना) डूबा हुआ है— बंसी के पास मछली घूम रही है।'

''एक व्यक्ति— उसका नाम नहीं लूँगा— उसने दस हजार रुपये के

---

* It is with our judgements as with our watches. None goes just alike, yet each believes his own.

लिए अदालत में झूठ बात कही थी। जीतने के लिए मुझ से माँ काली को अर्घ्य दिलवाया था। मैंने बालक बुद्धि से अर्घ्य दे दिया था! कहा था, 'बाबा यह अर्घ्य माँ को दे दो तो'!''

भक्त— अच्छा व्यक्ति!

श्रीरामकृष्ण— किन्तु इतना विश्वास कि मेरे देने से माँ सुनेंगी!

ललित बाबू की बात पर ठाकुर कहते हैं—

''अहंकार क्या जाता है जी? दो-एक जनों में नहीं दिखाई देता। बलराम का अहंकार नहीं है। और इनका नहीं। और व्यक्ति होता कितना ढेर तमो होता— विद्या का अहंकार होता। मोटे बामुन में अब भी थोड़ा-थोड़ा है! *(मास्टर के प्रति)* महिम चक्रवर्ती तो बहुत पढ़ा हुआ है ना?''

मास्टर— जी हाँ, बहुत पुस्तकें पढ़ीं हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— उसके साथ गिरीश घोष की एक बार बातचीत हुई थी। उस पर कुछ विचार हुआ।

गिरीश *(सहास्य)*— लगता है, वे कहते हैं कि साधन करने पर श्रीकृष्ण जैसे सब ही हो सकते हैं?

श्रीरामकृष्ण— बिलकुल तो नहीं— तो भी आभास उसी प्रकार का होता है।

भक्त— जी, श्रीकृष्ण के जैसे सभी हो सकते हैं?

श्रीरामकृष्ण— अवतार व अवतार के अंश, इन्हें कहते हैं ईश्वरकोटि और साधारण लोगों को कहते हैं जीव या जीवकोटि। जो जीवकोटि हैं, वे साधना करके ईश्वर-लाभ कर सकते हैं, वे समाधिस्थ होकर फिर लौटते नहीं।

''जो ईश्वरकोटि हैं, वे हैं जैसे राजा का बेटा। सातों तल की चाबी उसके हाथ में होती है। वे सातों तलों पर चढ़ जाते हैं, और फिर इच्छानुसार नीचे आ सकते हैं। जीवकोटि जैसे छोटे कर्मचारी हैं, सात तला घर के थोड़े हिस्से में जा सकते हैं। बस वहाँ तक ही।''

(ज्ञान और भक्ति का समन्वय)

''जनक ज्ञानी थे, साधन करके ज्ञान-लाभ किया था; शुकदेव ज्ञान की मूर्त्ति थे।''

गिरीश— आहा!

श्रीरामकृष्ण— साधन करके शुकदेव को ज्ञान-लाभ करना नहीं पड़ा था। नारद का भी शुकदेव की तरह से ब्रह्मज्ञान था, किन्तु भक्ति लेकर रहते थे— लोकशिक्षा के लिए। प्रह्लाद कभी सोऽहं-भाव में रहते थे, कभी दास-भाव में— सन्तान-भाव में। हनुमान की भी वैसी ही अवस्था थी।

''सोचने से सब की ही वैसी अवस्था नहीं होती। किसी-किसी बाँस का अधिक खोल होता है, किसी-किसी बाँस का सुराख छोटा होता है।''

चतुर्थ परिच्छेद

(कामिनी-काञ्चन और तीव्र वैराग्य)

एक भक्त— आपका सब भाव दृष्टान्त के लिए है, तो फिर हमें क्या करना होगा?

श्रीरामकृष्ण— भगवान-लाभ करने के लिए तीव्र वैराग्य आवश्यक है। ईश्वर के पथ में जो विरुद्ध लगे, तत्क्षण उसका त्याग करना चाहिए। 'पीछे हो जाएगा' कहकर पड़ा रहने देना उचित नहीं। कामिनी-काञ्चन ईश्वर के पथ में विरोधी हैं। उससे मन हटा लेना पड़ेगा।

''ढिमे तेताला (lack of enthusiasm / spiritedness— धीमे तिताला) होने से नहीं होगा। कोई व्यक्ति अंगोछा (तौलिया) कन्धे पर रखकर स्नान करने जा रहा था। स्त्री बोली, 'तुम किसी काम के नहीं हो, आयु बढ़ रही है, अभी तक यह सब त्याग नहीं कर सके। मुझे छोड़कर तुम एक दिन भी रह नहीं सकते। किन्तु अमुक व्यक्ति कैसा त्यागी है!'

पति— क्यों, उसने क्या किया है?

स्त्री— उसकी सोलह औरतें हैं, वह एक-एक करके उनका त्याग कर रहा है। तुम कभी भी त्याग नहीं कर सकोगे।

पति— एक-एक करके त्याग! अरी पगली (नासमझ), वह त्याग कर नहीं सकेगा। जो त्याग करता है वह क्या थोड़ा-थोड़ा करके त्याग करता है!

स्त्री *(सहास्य)*— तो भी तुम्हारी अपेक्षा अच्छा है।

पति— पगली, तू समझती नहीं। उसका काम नहीं है। मैं ही त्याग कर सकूँगा। यह देख, मैं चल दिया।

''इसका नाम है तीव्र वैराग्य। जैसे ही विवेक आया, तत्क्षण त्याग कर दिया। अंगोछा कन्धे पर ही चला गया। गृहस्थ का सुप्रबन्ध करने नहीं आया। घर की ओर एक बार मुड़कर (लौटकर) देखा भी नहीं।

''जो त्याग करेगा उसमें मन का खूब बल चाहिए। डकैती पड़ने वाला भाव। अय्याय!!! हाऽय हाऽय— डकैती करने से पहले डाकू कहते हैं— मारो! लूटो! काटो!

''तुम फिर क्या करोगे?— उनमें भक्ति, प्रेम प्राप्त करके ही दिन काटना।

''कृष्ण के अदर्शन से यशोदा पागलवत् होकर श्रीमती के पास गईं। श्रीमती ने उनका शोक देखकर आद्याशक्ति-रूप में दर्शन दिया। बोलीं, 'माँ, मुझ से वर लो।' यशोदा बोलीं, 'माँ और क्या लूँ? किन्तु यही कहो कि जैसे कायमनोवाक्य से कृष्ण की ही सेवा कर सकूँ। इन चक्षुओं से उनके भक्तों का दर्शन; जहाँ-जहाँ पर उनकी लीला हो, इन पैरों से जैसे वहाँ पर जा सकूँ; इन हाथों से उनकी सेवा और उनके भक्तों की सेवा; सब इन्द्रियाँ जैसे उनका ही कार्य करें।''

यह बात कहते-कहते ठाकुर श्रीरामकृष्ण में फिर और भावावेश की तैयारी हो रही है। हठात् अपने-आप कहते हैं, ''संहार मूर्ति काली! ना नित्यकाली!''

ठाकुर ने अतिकष्ट से भाव संवरण किया। अब थोड़ा-सा जल पिया। यशोदा की बात फिर और कहने लगते हैं। श्रीयुक्त महेन्द्र मुखुज्ये

आ गए। ये और इनके कनिष्ठ (छोटे) भाई श्रीयुक्त प्रिय मुखुज्ये ठाकुर के पास नए-नए आना-जाना करने लगे हैं। महेन्द्र की मैदे की चक्की (मिल) और अन्य व्यवसाय हैं। इनके भाई इन्जीनियर का काम करते हैं। इनका काम और लोग देखते हैं, इन्हें खूब अवसर है। महेन्द्र की वयस् 36 / 37 होगी, भाई की लगभग 34 / 35। इनका घर केदेटि ग्राम में है। कलकत्ता बागबाजार में एक निवास-स्थान है। उनके संग एक छोकरा भक्त आना-जाना करता है, उनका नाम है हरि। उनका विवाह हो गया है, किन्तु ठाकुर के ऊपर बड़ी भक्ति है। महेन्द्र बहुत दिन से दक्षिणेश्वर नहीं गए हैं। हरि भी नहीं गए— आज आए हैं। महेन्द्र गौरवर्ण और सदा हास्यमुख, शरीर दोहरा। महेन्द्र ने भूमिष्ठ होकर ठाकुर को प्रणाम किया। हरि ने भी प्रणाम किया।

श्रीरामकृष्ण— क्यों, इतने दिन दक्षिणेश्वर नहीं गए जी?

महेन्द्र— जी, केदेटि गया था, कलकत्ता में नहीं था।

श्रीरामकृष्ण— क्यों जी, बाल-बच्चे नहीं। किसी की चाकरी नहीं करनी पड़ती— तब भी अवसर नहीं! भली ज्वाला! (अजब है!)।

भक्तगण सब चुप हैं। महेन्द्र थोड़े अप्रस्तुत (परेशान) हैं।

श्रीरामकृष्ण *(महेन्द्र के प्रति)*— तुम्हें क्यों कहता हूँ?— तुम सरल और उदार हो— तुम्हारी ईश्वर में भक्ति है।

महेन्द्र— जी, आप तो मेरे भले के लिए ही कह रहे हैं।

(विषयी और रुपये वाला साधु— सन्तान की माया)

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— और यहाँ की यात्रा (खेल) पर प्याला (दर्शनी) देना नहीं पड़ता। यदु की माँ तभी तो कहती है, 'और साधु तो केवल देओ-देओ करते हैं। बाबा, तुम्हारा वैसा नहीं है'। विषयी व्यक्तियों का रुपया खर्च हो तो वे विरक्त (नाराज़) हो जाते हैं।

''एक जगह पर यात्रा (गान-नाटिका) हो रही थी। एक व्यक्ति की बैठ कर सुनने की बड़ी इच्छा थी। किन्तु उसने झाँक कर देखा कि सभा में

बैठने की दर्शनी पड़ रही है। तब वहाँ से धीरे-धीरे भाग गया। एक और स्थान पर यात्रा हो रही थी। उस स्थान पर गया। खोजने पर पता लगा कि यहाँ पर कोई भी दर्शनी नहीं दे रहा। बड़ी भीड़ हो गई। वह दोनों हाथों, कोहनियों द्वारा भीड़ को ठेल-ठेल कर सभा में जा उपस्थित हुआ। सभा में भली प्रकार बैठकर मूछों को उठाकर सुनने लगा। *(हास्य)*

''फिर तुम्हारे तो बाल-बच्चे नहीं हैं, जो मन अन्यमनस्क होगा। कोई डिप्टी आठ सौ रुपया महीना पाता था। केशवसेन के घर में नाटक (नववृन्दावन) देखने गया था। मैं भी गया था। मेरे साथ राखाल तथा और भी कोई-कोई गया था। नाटक सुनने के लिए मैं जहाँ पर बैठा था, वे मेरे पास बैठे थे। राखाल तब तनिक उठकर गया। डिप्टी आकर वहाँ बैठ गया और अपने छोटे बेटे को राखाल की जगह पर बिठा लिया। मैं बोला, यहाँ पर नहीं बैठोगे। मेरी अवस्था ऐसी थी कि जो पास बैठेगा, वह जो कहेगा वही करना पड़ता था, तभी राखाल को पास बिठाया था। जब तक नाटक हुआ डिप्टी की केवल बेटे के साथ बातें रहीं। साले ने एक बार भी थियेटर नहीं देखा! और फिर सुना है कि स्त्री का दास है— उठ कहने पर उठता है, बैठ कहने पर बैठता है— और फिर एक नक-बैठे बन्दर-से लड़के के लिए ऐसे! तुम ध्यान-श्यान तो करते हो?''

महेन्द्र— जी, थोड़ा-थोड़ा होता है।

श्रीरामकृष्ण— कभी-कभी जाओगे?

महेन्द्र *(सहास्य)*— जी, कहाँ पर गाँठ-टाँट हैं, आप तो जानते हैं। आप देखिएगा।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— पहले आया तो करो। तभी तो दबा-दबूकर देखूँगा, कहाँ पर क्या गाँठ है। आते क्यों नहीं?

महेन्द्र— काम की भीड़ के कारण आ नहीं पाता— और फिर केदेटि का घर बीच-बीच में देखना होता है।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों की ओर उंगली से निर्देश करके, महेन्द्र के प्रति)*— इन लोगों के क्या घर-बार नहीं और काजकर्म नहीं? ये लोग कैसे आते हैं?

(स्त्री का बन्धन)

श्रीरामकृष्ण *(हरि के प्रति)*— तू क्यों नहीं आता? तेरी स्त्री आ गई है शायद?

हरि— जी नहीं।

श्रीरामकृष्ण— तो फिर क्यों भूल गया?

हरि— जी, बीमार हो गया था।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— दुबला हो गया है— इसकी भक्ति तो कम नहीं है, भक्ति का वेग (चोट) कौन देखे! उत्पाती भक्ति। *(हास्य)*।

ठाकुर एक भक्त की स्त्री को 'हाबी की माँ' कहते हैं। हाबी की माँ का भाई आया है, कालेज में पढ़ता है। वयस् लगभग बीस होगी। वे क्रिकेट खेलने जाएँगे, उठ गए। छोटा भाई भी ठाकुर का भक्त है, वे भी संग में चले गए। कुछ क्षण पश्चात् द्विज के लौट आने पर ठाकुर बोले,

''तू नहीं गया?''

एक भक्त ने कहा,

''वे गाना सुनेंगे। जभी शायद लौट आए हैं।''

आज ब्राह्मभक्त श्रीयुक्त त्रैलोक्य का गाना होगा। पल्टु आ गए। ठाकुर कह रहे हैं,

''क्या रे— पल्टु आ गया रे!''

और एक विशेष छोकरा भक्त (पूर्ण) आ उपस्थित हुए। ठाकुर ने उन्हें बड़ी मुश्किल से बुलाया है। घर के लोग किसी भी भाँति आने नहीं देते। मास्टर जिस विद्यालय में पढ़ाते हैं, उसी विद्यालय में पंचम श्रेणी में यह लड़का पढ़ता है। लड़के ने आकर भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। ठाकुर उसको अपने निकट बिठाकर धीरे-धीरे बातें कर रहे हैं। मास्टर केवल पास बैठे हैं, और भक्तगण अन्यमनस्क हैं। गिरीश एक तरफ बैठे 'केशव-चरित्र' पढ़ रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(उसी छोकरे भक्त के प्रति)*— यहाँ पर आओ।

गिरीश *(मास्टर के प्रति)*— कौन है यह लड़का?

मास्टर *(विरक्त होकर)*— लड़का है, और कौन है?

गिरीश *(सहास्य)*— It needs no ghost to tell me that. (यह मुझे किसी को बताने की आवश्यकता नहीं है।)

मास्टर को भय है कि पीछे कहीं पाँच जनों को पता लगने पर लड़के के घर में झगड़ा-फसाद हो जाए और उनके नाम पर दोष आए। लड़के के साथ ठाकुर भी इसी कारण धीरे-धीरे बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— वह सब करते हो, जो कहा था?

लड़का— जी, हाँ।

श्रीरामकृष्ण— स्वप्न में कुछ देखते हो?— अग्नि-शिखा, मशाल का आलोक? सधवा स्त्री, श्मशान-मशान?— ये समस्त देखना बहुत अच्छा है।

लड़का— आपको देखा है— बैठे हुए हैं— कुछ कह रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— क्या— उपदेश?— कैसे, एक बताओ तो देखूँ ज़रा।

लड़का— याद नहीं है।

श्रीरामकृष्ण— जो हो, वह बहुत अच्छा है!— तुम्हारी उन्नति होगी। मेरे ऊपर टान (आकर्षण) तो है?

कुछ क्षण पश्चात् ठाकुर कह रहे हैं—

''क्यों, वहाँ पर नहीं जाओगे?''— अर्थात् दक्षिणेश्वर।

लड़के ने कहा,

''वह कह नहीं सकता।''

श्रीरामकृष्ण— क्यों, वहाँ पर तुम्हारा कोई रिश्तेदार है ना?

लड़का— जी हाँ, किन्तु वहाँ जाने की सुविधा नहीं होगी।

गिरीश 'केशव-चरित्र' पढ़ रहे हैं। ब्राह्मसमाज के श्रीयुक्त केशवसेन का वह जीवन-चरित्र लिखा गया है। उस पुस्तक में है कि परमहंसदेव पहले संसार के ऊपर बड़े विरक्त थे, किन्तु केशव के साथ मिलने-जुलने के बाद उन्होंने मत बदल लिया है। अब परमहंस कहते हैं कि संसार (गृहस्थ) में भी धर्म होता है। यह बात पढ़कर किसी-किसी भक्त ने ठाकुर को बताई है। भक्तों की इच्छा है कि त्रैलोक्य के साथ आज इसी

विषय को लेकर बातचीत हो। ठाकुर को पुस्तक से पढ़कर वे सब बातें सुना दी गई थीं।

(ठाकुर की अवस्था— भक्तसंग-त्याग)

गिरीश के हाथ में पुस्तक देखकर ठाकुर गिरीश, मास्टर, राम तथा अन्य भक्तों से कहते हैं,

''वे लोग वही लिए रहते हैं, तभी 'संसार-संसार' करते हैं!— कामिनी-काञ्चन के भीतर रह रहे हैं। उनको प्राप्त कर लेने पर फिर ऐसी बात नहीं कहता। ईश्वर का आनन्द पा लेने पर संसार काक-विष्ठा हो जाता है। मैंने पहले सब छि:-छि: कर दिया था। विषयी-संग तो त्याग किया था— और फिर बीच-बीच में भक्तसंग-वंग भी त्याग कर दिया था! देखा, सब पट्-पट् मर जाते हैं— सुनकर छटपटाता! अब फिर भी कुछ थोड़े लोग लेकर रहता हूँ!''

पञ्चम परिच्छेद

(संकीर्त्तनानन्द में भक्तों के संग)

गिरीश घर चले गए। फिर दोबारा आएँगे।

श्रीयुक्त जयगोपाल सेन के साथ त्रैलोक्य आ उपस्थित हुए। उन्होंने ठाकुर को प्रणाम किया और असान ग्रहण किया। ठाकुर उनसे कुशल-प्रश्न करते हैं। छोटे नरेन ने आकर भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। ठाकुर बोले— क्यों, तू शनिवार को आया नहीं?

अब त्रैलोक्य गाना गाएँगे।

श्रीरामकृष्ण— आहा, तुमने उस दिन आनन्दमयी का गान किया—कैसा गाना! और सब लोगों का गाना आलुनि लगता है! उस दिन नरेन्द्र का गाना भी अच्छा नहीं लगा। वही फिर इस समय हो जाए ना!

त्रैलोक्य गा रहे हैं— 'जय शचीनन्दन।'

ठाकुर मुख धोने जा रहे हैं। स्त्री भक्तगण चिक के पास व्याकुल हुई बैठी हैं। उनके पास जाकर एक बार दर्शन देंगे।

त्रैलोक्य का गाना चल रहा है।

ठाकुर कमरे के मध्य से लौट आकर त्रैलोक्य से कह रहे हैं— "थोड़ा-सा आनन्दमयी का गाना गाओ।" त्रैलोक्य गा रहे हैं—

कतो भालोवासा गो मा मानव सन्ताने,
मने होले प्रेमधारा बहे दुनयने (गो मा)
तब पदे अपराधी, आछि आमि जन्मावधि,
तबु चेये मुख पाने प्रेम नयने, डाकिछ मधुर बचने,
मने होले प्रेमधारा बहे दुनयने।

तोमार प्रेमेर भार, बोहिते पारि ना गो आर,
प्राण उठिछे काँदिया, हृदय भेदिया, तव स्नेह दरशने,
लइनु शरण मा गो तब श्रीचरणे (गो मा)॥

[भावार्थ— माँ, आपका मानव-सन्तान के लिए कितना प्यार है! ओ माँ, याद आते ही दोनों नयनों से प्रेमधारा बहने लगती है। मैं आपके चरणों का जन्म-अवधि से ही अपराधी हूँ, फिर भी आप प्रेम-नयनों से मेरे मुख को देख रही हो, और मधुर वचनों में पुकार रही हो। याद आते ही दोनों नयनों से प्रेम-धारा बहने लगती है।

माँ, अब मैं तुम्हारे प्रेम का भार और सहन नहीं कर सकता। प्राण हृदय भेदन करके रो उठा है, तेरे स्नेह दर्शन से। माँ, अब श्रीचरणों की शरण में ले लो।]

गाना सुनते-सुनते छोटे नरेन गम्भीर ध्यान में निमग्न हो गए हैं, जैसे काष्ठवत्! ठाकुर मास्टर से कहते हैं,

"देख, देख, कैसा गम्भीर ध्यान! एकदम बाह्यशून्य!"

गाना समाप्त हो गया। ठाकुर ने त्रैलोक्य से यह गाना गाने के लिए कहा— 'दे मा पागल करे, आर काज नाइ ज्ञान विचारे।'

राम कह रहे हैं, कुछ हरिनाम हो जाय! त्रैलोक्य गा रहे हैं—

मन एक बार हरि बोल, हरि बोल।
हरि हरि हरि बोल, भवसिन्धु पारे चल।

मास्टर धीरे-धीरे कहते हैं, 'गौर-निताई तोमरा दुभाइ।'

ठाकुर भी उसी गाने को ही गाने के लिए कह रहे हैं। त्रैलोक्य और भक्तगण सब मिलकर गा रहे हैं—

गौर-निताइ तोमरा दुभाइ परम दयाल हे प्रभु!

ठाकुर ने भी योगदान किया। समाप्त होने पर और एक शुरु कर दिया—

जादेर हरि बोलते नयन झरे तारा दु'भाई एसेछे रे।
जारा मार खेये प्रेम जाचे तारा दु'भाई एसेछे रे।
जारा ब्रजेर कानाई-बलाई तारा तारा दु'भाई एसेछे रे।
जारा आचण्डाले कोल देय तारा तारा दु'भाई एसेछे रे।

[भावार्थ— जिनके हरि बोलते-बोलते नयन बरसते हैं, वे दो भाई आए हैं रे! जो मार खाकर प्रेम माँगते हैं, वे दो भाई आए हैं रे! जो ब्रज के कन्हाई-बलाई हैं, वे दोनों भाई आए हैं रे! जो चण्डाल तक को गोद में लेते हैं, वे दो भाई आए हैं रे!]

उसी गाने के संग ही ठाकुर और एक गाना गाते हैं—

नदे टलमल टलमल करे गौर प्रेमेर हिल्लोले रे!
[गौर-प्रेम की हिल्लोल से भाई, नदिया डोल रहा है।]

ठाकुर ने फिर और बोला—

के हरि बोल, हरि बोल, बोलिए जाय?
जा रे माधाइ जेने आय।
बुझि गौर जाए आर निताइ जाय रे।
जादेर सोनार नुपूर राँगा पाय।
जादेर न्याड़ा माथा छेड़ा कान्था रे।
जेनो देखि पागलेरइ प्राय।

[भावार्थ— कौन 'हरि बोल-हरि बोल' कहता हुआ जा रहा है? अरे मधाई, जा पता करके आ। लगता है रे, गौर जा रहे हैं और निताई जा रहे हैं। जिनके सोने के नुपूर और लाल चरण हैं। जिनका सिर मुण्डा हुआ और फटा हुआ कन्था (थेगलियों वाला कपड़ा) है, रे! दिखने में प्राय: पागल जैसे हों।]

छोटे नरेन विदा ले रहे हैं—

श्रीरामकृष्ण— तू माता-पिता की खूब भक्ति करियो। किन्तु ईश्वर के पथ में बाधा देने पर मत मानना! खूब तेज (रोख) लाइयो— शाला बाप!

छोटे नरेन— कौन जाने, मुझे कुछ भी भय नहीं होता।

गिरीश घर से होकर फिर दोबारा आ गए। ठाकुर ने त्रैलोक्य के साथ आलाप करवा दिया है और कहते हैं, 'तुम थोड़ा आलाप करो।' कुछ आलाप के पश्चात् त्रैलोक्य से कह रहे हैं, 'वही गाना ही फिर एक बार'। त्रैलोक्य गाते हैं—

(झिञ्झिट खम्बाज— ठुमरी)

जय शचीनन्दन, गौर गुणाकर, प्रेम-परशमणि, भाव-रस-सागर।
किवा सुन्दर मुरतिमोहन आँखिरंजन कनकवरण,
किवा मृणालनिन्दित, आजानुलम्बित, प्रेम प्रसारित, कोमल युगल कर।
किवा रुचिर बदन-कमल, प्रेमरसे ढलढल,
चिकुर कुन्तल, चारु गण्डस्थल, हरिप्रेमे विह्वल, अपरूप मनोहर।
महाभावे मण्डित, हरि रसे रञ्जित, आनन्दे पुलकित अंग,
प्रमत्त मातंग, सोनार गौरांग,
आवेशे विभोर अंग, अनुरागे गर-गर।
हरिगुणगायक, प्रेमरस नायक,
साधु-हृदिरंजक, अलोकसामान्य, भक्तिसिन्धु श्री चैतन्य,
आहा! 'भाई' बोलि चण्डाले, प्रेम भरे लोन कोले,
नाचेन दु'बाहु तुले, हरि बोल हरि बोले,
अविरल झरे जल नयने निरन्तर।
'कोथा हरि प्राणधन'— बोले करे रोदन,
महास्वेद कम्पन, हुंकार गर्जन,
पुलके रोमाञ्चित, शरीर कदम्बित, धुलाय विलुण्ठित सुन्दर कलेवर।
हरि-लीला-रस-निकेतन, भक्तिरस-प्रस्रवण,
दीनजन-बान्धव, बंगेर गौरव, धन्य-धन्य श्रीचैतन्य प्रेम शशधर।

[भावार्थ— जय शचीनन्दन, गौर गुणों की खान, प्रेम-पारसमणि, भाव-रस के सागर। कैसी सुन्दर मोहन मूरति, आँखों को प्रिय लगने वाला कनक वर्ण, कैसी मृणाल निन्दित (कमल की नाल— ककड़ी को सुन्दरता में हराने वाली) आजानुलम्बित (घुटनों तक लम्बी) बाहें, प्रेम से फैले हुए कोमल दोनों हाथ, प्रेम-रस में डूबा हुआ कैसा सुन्दर कमल-मुख, केशों की लटें फहरा रहीं, सुन्दर गण्डस्थल (गाल—cheek) हरिप्रेम में विह्वल, अपरूप मनोहर! महाभाव में मण्डित, हरि-रस में रंजित, आनन्द में पुलकित अंग, पागल हाथी, सोने के गौरांग, आवेश में विभोर अंग, ईश्वर-प्रेम में भरपूर! हरिगुण गायक, प्रेम-रस नायक, साधु-हृदय को आनन्द देने वाले प्रकाश जैसे श्री चैतन्य भक्ति के सिन्धु हैं। आहा! चण्डाल को 'भाई' कहकर प्रेम से भरकर गोद में लेते हैं, नयनों से अविरल जल झरता है! 'कहाँ हैं प्राणधन हरि'— कहकर रोदन करते हैं। महास्वेद (घना-पसीना), कम्पन, हुंकार के साथ गर्जन, पुलकित-रोमाञ्चित, कदम्बित (कदम्ब के फूल जैसा), धूल में लोटपोट सुन्दर कलेवर। हरि-लीला के रस का घर, भक्ति-रस का झरना, दीनजनों का बन्धु, बंगदेश का गौर, धन्य-धन्य श्री चैतन्य-प्रेम-शशधर (चन्द्र)!]

''गौर हँसते-रोते, नाचते-गाते हैं''— यह बात सुनकर ठाकुर भावाविष्ट होकर खड़े हो गए— बिलकुल बाह्यशून्य!

कुछ प्रकृतिस्थ होकर— त्रैलोक्य से अनुनय-विनय करके कहते हैं, ''एक बार वही गाना ही!— 'कि देखिलाम रे'।''

त्रैलोक्य गाते हैं—

कि देखिलाम रे, केशव भारतीर कुटिरे,
अपरूप ज्योति गौरांग मूरति, दुनयने प्रेम बहे शत धारे।

[भावार्थ— केशव भारती की कुटीर में मैंने क्या देखा है, भाई!— अपरूप ज्योति— गौरांग की मूर्ति, दोनों नयनों से प्रेम सैंकड़ों-सैंकड़ों धाराओं में बह रहा है।]

गाना समाप्त हो गया। सन्ध्या हो गई। ठाकुर अब भी भक्तों के संग में बैठे हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण *(राम के प्रति)*— बाजना (ढाक वाद्य आदि) नहीं हैं! अच्छा बाजना हो तो गाना खूब जमता है। *(सहास्य)* बलराम का आयोजन कैसा है, जानते हो? बामुन की गोड़ि (गाय) खाएगी कम— दूध देगी हुड़-हुड़ करके (ढेरों)! *(सबका हास्य)*। बलराम का भाव है— आप लोग गाओ, आप लोग बजाओ! *(सबका हास्य)*।

षष्ठ परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण और विद्यासागर— ईश्वर-लाभ के पश्चात् संसार)

सन्ध्या हो गई। बलराम की बैठक में और बरामदे में आलोक जला दिया गया। ठाकुर श्रीरामकृष्ण जगत की माता को प्रणाम करके मूलमन्त्र जप करके 'नाम' कर रहे हैं। भक्तगण चारों तरफ बैठे हैं और वही मधुर 'नाम' सुन रहे हैं। गिरीश, मास्टर, बलराम, त्रैलोक्य और अन्य बहुत-से भक्त अब भी हैं। 'केशव-चरित्र' ग्रन्थ में ठाकुर के सम्बन्ध में मत- परिवर्तन की बात जो लिखी हुई है, त्रैलोक्य के सामने वही बात उठाएँगे— भक्तों ने निश्चय किया है। गिरीश ने बात आरम्भ की। वे त्रैलोक्य से कहते हैं,

''आपने जो लिखा है कि संसार के सम्बन्ध में इनका मत-परिवर्तन हो गया है, वह वस्तुत: हुआ नहीं।''

श्रीरामकृष्ण *(त्रैलोक्य और अन्यान्य भक्तों के प्रति)*— इधर का आनन्द पा लेने पर वह तो अच्छा नहीं लगता— भगवान का आनन्द-लाभ कर लेने पर संसार अलोना बोध होता है। शाल पा लेने पर फिर बनात अच्छी नहीं लगती।

त्रैलोक्य— जो संसार करेंगे, उनकी बात ही मैं कहता हूँ। जो त्यागी हैं, उनकी बात नहीं कहता।

श्रीरामकृष्ण— तुम्हारी यह समस्त कैसी बातें हैं! जो 'संसार-धर्म', 'संसार-धर्म' करते हैं, वे एक बार भी यदि भगवान का आनन्द पाते हैं तो उन्हें और कुछ भी अच्छा नहीं लगता। काम का बन्धन कम हो जाता है। क्रमश: जितना आनन्द बढ़ता है, काम फिर कर नहीं सकता; केवल उसी आनन्द को खोजता फिरता है। भगवान के आनन्द के निकट विषयानन्द और रमणानन्द! एक बार भगवान के आनन्द का स्वाद पा लेने पर उसी आनन्द के लिए दौड़ता-भागता फिरता है, तब संसार रहे या जाए।

''चातक की तृष्णा से छाती फटी जा रही है। सात समुद्र, सभी नदियाँ सारे तालाब— सब हैं भरपूर! किन्तु वह जल नहीं पिएगा। छाती फटी जा

रही है तब भी नहीं पीता! स्वाति नक्षत्र की वर्षा के जल के लिए 'हॉ' करे (मुँह फैलाए) बैठा है। 'बिना स्वाती कि जल सब धूर'!''

(दो आना मद और दोनों दिक् रखना)

''कहता है 'दु'दिक रखूँगा। दो आना मद खाकर मनुष्य दोनों दिक् रखना चाहता है, और खूब मद खाकर क्या फिर 'दु 'दिक' रखा जाता है!

''ईश्वर का आनन्द पा लेने पर और कुछ अच्छा नहीं लगता। तब कामिनी-काञ्चन की बात पर जैसे छाती में पत्थर पड़ता है। (ठाकुर कीर्त्तन के सुर में कहते हैं) 'आन् लोकेर आन् कथा, किछु भालो लागे ना!' (दूसरे लोगों की दूसरी बात, कुछ भी अच्छा नहीं लगता)!''

त्रैलोक्य— संसार में रहने के लिए रुपया तो चाहिए ही, सञ्चय भी चाहिए। कितना कुछ है— दान! ध्यान!

श्रीरामकृष्ण— क्या! पहले रुपया सञ्चय करके तब ईश्वर! और दान-ध्यान-दया— कितनी! अपनी लड़की की शादी में हजारों-हजारों रुपया खर्च होता है और पास के घर में खाने को नहीं मिलता। उन्हें दो मुट्ठी चावल देते हुए कितना कष्ट होता है! बहुत हिसाब करके दिया जाता है। लोगों को खाने को नहीं मिलता। तो फिर क्या होगा? वे साले मरें या बचें— मैं और मेरे घर के सब ठीक रहने से ही हुआ। मुख से कहता है, सब जीवों पर दया!

त्रैलोक्य— गृहस्थ में तो अच्छे लोग भी हैं— पुण्डरीक विद्यानिधि चैतन्यदेव के भक्त थे। वे तो गृहस्थ में ही थे।

श्रीरामकृष्ण— उसने गले पर्यन्त मद खाया हुआ था। यदि और थोड़ा-सा खा लेता तो फिर गृहस्थ (संसार) नहीं कर सकता था।

त्रैलोक्य चुप किए रहे। मास्टर गिरीश को जनान्तिक से कहते हैं, 'तो फिर उन्होंने जो लिखा है, ठीक नहीं।'

गिरीश— तो फिर क्या आपने जो लिखा है, वह बात ठीक नहीं?

त्रैलोक्य— क्यों! गृहस्थ में धर्म होता है। ये क्या मानते नहीं?

श्रीरामकृष्ण— होता है। किन्तु ज्ञान-लाभ करके रहना चाहिए— भगवान को लाभ करके रहना चाहिए। 'तब कलंक सागरे भासे, तबु कलंक ना लागे गाय।' (तब काजल के सागर में तैरने पर भी काजल शरीर पर नहीं लगता)। तब पाँकाल मछली की भाँति रह सकता है। ईश्वर-लाभ के पश्चात् जो संसार (गृहस्थ) होता है, वह विद्या का संसार है। कामिनी-काञ्चन उसमें नहीं— केवल भक्ति, भक्त और भगवान। मेरी भी औरत है। घर में लोटा-कटोरी भी है। हरि के नाम पर खिला देता हूँ, और फिर जब हाबी की माँ हर आती हैं, उनके लिए भी सोचता हूँ।

सप्तम परिच्छेद

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण और अवतार-तत्त्व)

एक जन भक्त *(त्रैलोक्य के प्रति)*— आपकी पुस्तक में देखा था, आप अवतार नहीं मानते। चैतन्यदेव की बातों में देखा था।

त्रैलोक्य— उन्होंने स्वयं ही प्रतिवाद किया है— पुरी में जब अद्वैत और अन्य भक्तों ने 'वे ही भगवान' यह बोलकर गाना गया था, गाना सुनकर चैतन्यदेव ने कमरे का द्वार बन्द कर दिया था। ईश्वर का अनन्त ऐश्वर्य है। ये जैसे कहते हैं, भक्त ईश्वर की बैठक है। तो क्या बैठक खूब सजी हुई होने के कारण उसके अतिरिक्त उनका और कुछ ऐश्वर्य नहीं है?

गिरीश— ये कहते हैं, प्रेम ही है ईश्वर का सारांश— जिस मनुष्य के द्वारा ईश्वर का प्रेम आता है, वही हमें प्रयोजनीय है। ये कहते हैं, गाय का दूध थनों से आता है, हमें थन ही प्रयोजनीय हैं। गाय के शरीर का और कुछ आवश्यक नहीं है; हाथ, पाँव या सींग।

त्रैलोक्य— उनका प्रेमदुग्ध अनन्त प्रणालियों द्वारा पड़ रहा है! वे तो अनन्त शक्ति हैं।

गिरीश— उस प्रेम के निकट क्या और कोई शक्ति ठहरती है?

त्रैलोक्य— जिनकी शक्ति है उनको याद करने से ही हो जाता है! सब ही

ईश्वर की शक्ति है।

गिरीश— और सब चाहे उनकी ही शक्तियाँ हैं, किन्तु अविद्या शक्ति?

त्रैलोक्य— अविद्या क्या वस्तु है! अविद्या नामक क्या कोई वस्तु है भी? अविद्या तो एक विशेष अभाव है। जैसे अन्धकार प्रकाश का अभाव है। उनका प्रेम हमारे लिए चाहे खूब बड़ा है। उनके बिन्दु में है हमारा सिन्धु! किन्तु वह ही जो अन्त है, यह बात कहने पर तो उनको सीमा में बाँधना हो गया।

श्रीरामकृष्ण *(त्रैलोक्य तथा अन्य भक्तों के प्रति)*— हाँ, हाँ! वह तो है ही। किन्तु ज़रा-सा मद खा लेने पर ही हमें नशा हो जाता है। कलाल की दुकान पर कितना मद है, उसके हिसाब का हमें क्या काम! अनन्त शक्ति की खबर का हमें क्या काम?

गिरीश *(त्रैलोक्य के प्रति)*— आप अवतार मानते हैं?

त्रैलोक्य— भक्त में ही भगवान अवतीर्ण होते हैं। अनन्त शक्ति का manifestation (विकास, प्रकाश) होता नहीं, हो सकता नहीं!— किसी भी मनुष्य में हो सकता नहीं।

गिरीश— लड़कों की 'ब्रह्मगोपाल' कहकर सेवा कर सकते हैं, महापुरुष को ईश्वर कहकर क्या पूजा नहीं की जा सकती?

श्रीरामकृष्ण *(त्रैलोक्य के प्रति)*— अनन्त में प्रवेश क्यों करना चाहते हो? तुम्हें छूने के लिए क्या तुम्हारे सारे शरीर को ही छूना होगा? यदि गंगास्नान करना है तो फिर क्या हरिद्वार से गंगासागर पर्यन्त छूते जाना होगा? ''आमि गेले घुचिबे जंजाल'' ('मैं' के जाते ही सब जंजाल खत्म हो जाएगा।) जब तक 'मैं'पन रहता है तब तक भेदबुद्धि है। 'मैं' के चले जाने पर क्या रह जाता है, उसे कोई जान नहीं सकता, मुख से बोला नहीं जाता। जो है, वही है। तब थोड़ा-सा प्रकाश इनमें हुआ है और बाकी बचा प्रकाश वहाँ पर हुआ है, यह सब मुख से नहीं बोला जाता। सच्चिदानन्द-सागर! उसके भीतर 'मैं' घट। जब तक घट है तब तक जैसे जल के दो भाग हैं, घट के भीतर का एक भाग, बाहर का एक भाग। घड़ा टूट गया— एक जल— वह भी कहा नहीं जाता! कौन कहेगा?

विचार के अन्त में ठाकुर त्रैलोक्य के संग मिष्टालाप करते हैं।

श्रीरामकृष्ण— तुम तो आनन्द में हो?

त्रैलोक्य— कहाँ! यहाँ से उठते ही फिर दोबारा वैसा ही हो जाऊँगा, जैसा हूँ। अब तो खूब सुन्दर ईश्वर की उद्दीपना हो रही है।

श्रीरामकृष्ण— जूता पहने रहने पर काँटों के वन में फिर भय नहीं। 'ईश्वर सत्य और सब अनित्य'— यह बोध रहने से फिर कामिनी-काञ्चन का भय नहीं रहता।

त्रैलोक्य का मुँह मीठा करवाने के लिए कहने पर बलराम उन्हें कमरे के अन्दर ले गए। श्रीरामकृष्ण त्रैलोक्य और उनके मतावलम्बी लोगों की अवस्था का भक्तों से वर्णन करते हैं। रात के नौ बज गए।

(अवतार को क्या सभी पहचान सकते हैं?)

श्रीरामकृष्ण *(गिरीश, मणि तथा अन्य भक्तों के प्रति)*— ये लोग कैसे हैं, जानते हो? एक छोटे कुएँ का मेंढ़क, 'कभी भी पृथ्वी नहीं देखी। छोटा कुआँ ही जानता है।' जभी विश्वास नहीं करेगा कि एक पृथ्वी भी है। भगवान के आनन्द का सन्धान नहीं मिला है, तभी 'संसार-संसार' करता है।

(गिरीश के प्रति)— ''उन लोगों के साथ क्यों बक-बक (बहस) करते हो? वे दोनों को ही लिए हुए हैं। भगवान के आनन्द का आस्वाद बिना पाए उस आनन्द की बात समझ नहीं सकते। पाँच वर्ष के बालक को क्या रमण-सुख समझाया जाता है? विषयीगण जो ईश्वर-ईश्वर करते हैं, वह सुनी-सुनाई बात है। जैसी चाची-ताई के झगड़ा करते समय, उनसे बालक सुनकर सीख जाते हैं, 'मेरा ईश्वर है', 'तुझे ईश्वर की सौगन्ध'।

''वह होता रहे। उनका दोष नहीं। सब ही क्या उसी अखण्ड सच्चिदानन्द की धारणा कर सकते हैं? रामचन्द्र को केवल बारह ऋषि जान पाए थे। सब नहीं पकड़ पाए। कोई साधारण मनुष्य सोचता, कोई साधु-भाव में लेता— दो चार जनों ने अवतार-रूप में जाना था।

''जिसकी जैसी पूँजी— वह वस्तु का उसी प्रकार का मूल्य देता है। एक बाबू ने अपने चाकर से कहा, तू यह हीरा बाजार में ले जा। मुझे बताना कि कौन किस प्रकार की दर देता है। पहले बैंगन वाले के पास ले जा। चाकर पहले बैंगन वाले के पास ले गया। उसने घुमा-फिरा कर देख कर कहा— भाई, नौ सेर बैंगन मैं दे सकता हूँ। सेवक ने कहा, भाई, कुछ और थोड़ा-सा बढ़ो, चलो दस सेर दे दो। वह बोला, 'मैं बाजार की दर की अपेक्षा अधिक कह चुका हूँ, इसमें तुम्हें पुजे तो दे जाओ।' सेवक तब हँसते-हँसते उस हीरे को लौटाकर बाबू के पास ले जाकर बोला, 'महाशय, बैंगन वाला नौ सेर बैंगन से अधिक एक भी नहीं देगा।' उसने कहा है, 'मैं तो बाजार की दर की अपेक्षा अधिक कह चुका हूँ।'

''बाबू ने हँसकर कहा, अच्छा अब कपड़े वाले के पास ले जा। वह (बैंगनवाला) तो बैंगन लेकर रहता है, वह फिर कितना तक समझेगा! कपड़े वाले की पूँजी थोड़ी अधिक है— देखूँ, वह क्या कहता है। चाकर ने कपड़े वाले से कहा, 'अरे भाई, इसे लोगे? कितना मूल्य दे सकते हो?' कपड़े वाले ने कहा, 'हाँ, चीज तो अच्छी है, इससे सुन्दर गहना बन सकता है। तो भाई, मैं नौ सौ रुपया दे सकता हूँ।' नौकर ने कहा, 'भाई, और तनिक बढ़ो तो फिर तुम्हें दे जाऊँ। अधिक न हो, हजार रुपये दे दो।' कपड़े वाला बोला, 'भाई, और कुछ मत कहो, मैंने बाजार-भाव से अधिक कह दिया है। नौ सौ रुपये से अधिक तो एक भी रुपया मैं दे नहीं सकूँगा।' सेवक लौटकर मालिक के पास हँसता-हँसता गया और बोला कि कपड़ेवाला कहता है— नौ सौ रुपये से अधिक तो एक रुपया भी वह नहीं दे सकेगा। और भी उसने कहा है, मैंने बाजार की दर की अपेक्षा अधिक कह दिया है। तब मालिक ने हँसते-हँसते कहा, अब जौहरी के पास जाओ— वह क्या कहता, देखें। सेवक जौहरी के पास आया। जौहरी तनिक-सा देखते ही एकदम बोला, एक लाख रुपया दूँगा।''

(ईश्वरकोटि और जीवकोटि)

''संसार में ये लोग धर्म-धर्म करते हैं। जैसे कोई व्यक्ति कमरे में है, सारा बन्द— छत के छिद्र में से थोड़ा-सा प्रकाश आ रहा है। सिर पर छत हो तो क्या सूर्य दिखाई देता है? तनिक-से आलोक के आने से क्या होगा? कामिनी-काञ्चन छत है! छत को उठा न दिया जाए तो क्या सूर्य दिखाई देता है! संसारी लोग जैसे कमरे के अन्दर बन्द हैं।

''अवतार आदि ईश्वरकोटि हैं। वे खुली (उन्मुक्त) जगह में टहलते हैं। वे कभी भी संसार में बद्ध नहीं होते, बन्दी नहीं होते। उनका 'मैं' मोटा 'मैं' नहीं, संसारी लोगों की भाँति। संसारी लोगों का अहंकार, संसारी लोगों का 'मैं' है जैसे चारों ओर प्राचीर (चारदीवारी) और सिर के ऊपर छत। बाहर की कोई भी वस्तु दिखाई नहीं देती। अवतार आदि का 'मैं' पतला 'मैं' है। इस 'मैं' के भीतर से ईश्वर को सर्वदा देखा जाता है। जैसे कोई व्यक्ति चारदीवारी के एक ओर खड़ा हुआ है, चारदीवारी के दोनों ओर ही अनन्त मैदान है। उस प्राचीर में यदि छिद्र हो तो प्राचीर के उस तरफ का सब दिख जाता है। बड़ा छेद हो तो आना-जाना भी हो जाता है। अवतार आदि का 'मैं' यही सुराख वाला प्राचीर है। प्राचीर के इस ओर रहने पर भी अनन्त मैदान दिख जाता है। इसके मायने हैं, देह धारण करने पर भी वे सर्वदा योग में ही रहते हैं और फिर इच्छा होने पर बड़े छेद के उस पार जाकर समाधिस्थ हो जाते हैं। और फिर बड़ा छेद होने पर आना-जाना भी कर सकते हैं। समाधिस्थ होने पर भी फिर दोबारा उतर कर आ सकते हैं।''

भक्तगण अवाक् होकर अवतार-तत्त्व सुनते रहे।